मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

पं. महेश दत्त शर्मा
मानस मर्मज्ञ एवं श्रीविद्या उपासक
जयपुर

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् । वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपित भूविजृम्भ- प्रस्ताधिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।४)

(श्रीशुकदेवजी कहते हैं- 'राजन् !) जिन श्रीरामचन्द्रजी ने अपने पिता के प्रण को पूरा करने के निमित्त राज्य को त्याग दिया, जो इतने सुकुमार थे कि अपनी प्रिया जानकी के पाणिस्पर्श को भी सहन नहीं कर सकते थे, वे ही अति मृदुल चरणकमलों से पैदल ही वन-वन विचरते रहे। जिनके पथश्रम को हनुमान् जी तथा लक्ष्मणजी दूर करते थे। शूर्पणखा को विरूप करने के कारण प्रिया-हरण की विरह-व्यथा से कुपित तथा कुटिल भुकुटियों से सागर भयभीत हो गया था, उस पर जो पुल बाँधकर दुष्ट-दलरूप वनके लिये दावानल हुए, वे कोसल-किशोर हमारी रक्षा करें।'

रामनाम अति मधुर सुखद सबकू सुखकारी
राम-धाम अति विमल पुण्यप्रद सब अघहारी।
राम-रूप अति सुधर मनोहर सुख सरसावन
राम-प्रिया जगजननि जीव जग-जरनि जरावन ।।

राम अनुज आदरश अति, राम भक्त सुखसार है।
राम-चरित पावन परम, होवें सुनि भवपार हैं।।

हे राम ! तुम्हारा नाम कितना मोहक है, चाहे जैसे हो राम का नाम लिये बिना कोई रह ही नहीं सकता। जिनको आपके नाम लेने का रस मिल जाता है वे एक दिन अन्न-जल के बिना तो रह भी सकते हैं, किंतु तुम्हारा नाम लिये बिना रह नहीं सकते। और चाहे जीवनोपयोगी वस्तुओ से मन हट भी जाय, किंतु तुम्हारे नाम से नाम-व्यसनियों का चित

कभी नहीं हटता। वे चाहते हैं कि जब तक जीवे, तब तक तुम्हारे नामामृत का निरन्तर पान करते रहें। प्राण जिस समय निकलने लगे, तब हमारे मुख में एकमात्र तुम्हारा ही नाम हो। तुम्हारे नाम में इतनी मोहकता, मादकता क्यों है ? क्यों इतना प्रिय है ? इसे हम नामविमुख अज्ञ प्राणी क्या जानें ?

जैसे तुम्हारे 'राम' इन दो सरल-सीधे अक्षरों में अत्यधिक आकर्षण है, वैसे ही तुम्हारे चारु-चरितों में आवश्यकता से अधिक आकर्षण है। जो भी कवि कविता करने चला है, उसने आपके ही चरितों के गान में अपनी कविता की सार्थकता समझी है। आपके चरितों के गान में कविता के गुण न भी हों, वे पद्य असम्बद्ध भी हों तो भी मनीषियों ने उनकी प्रशंसा की है। जिनको आपके चरित्रों के सुनने का व्यसन पड़ गया है उनके कर्णकुहर कभी सुनते-सुनते भरते नहीं। जिन्हें आपके गुणगान का रोग हो गया है, उनकी वाणी आपके गुण गाते-गाते कभी थकती नहीं। जिनकी लेखनी को आपके चरित लिखने का व्यसन पड़ गया है, उनकी लेखनी लिखते-लिखते कभी घिसती नहीं। न जाने इन चरित्रों में कैसा अमृत भरा है, कि बारंबार सुनने पर भी ये नित्य नये-से ही लगते हैं।

भक्तों की बात तो पृथक् है। भक्त तो इस लोक के जीव होते नहीं। वे तो अनुगृह्य-सृष्टि के जीव हैं, किंतु जो संसारी मनुष्य हैं, उनको भी आपका चरित्र आदर्श लगता है और वे आपको मनुष्य मानकर ही आपकी लीलाओं के विषय में ऊहापोह करते रहते है। राम का रहन-सहन, राम का उठना-बैठना, राम का आचार- विचार, राम का मिलना-जुलना, राम का हँसना-बोलना, राम का चलना-फिरना, राम का खेलना-कूदना, राम का पढ़ना-लिखना, राम का विवाह-वनगमन, मैत्री, युद्ध, राज्य-संचालन यहाँ तक कि क्रोध आदि सभी आदर्श हैं। उनमें न्यूनता नहीं, त्रुटि नहीं, परिपूर्ण के समस्त कार्य परिपूर्ण ही होते हैं।

हम रामके जीवन पर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो हमें उसमें कहीं भी अपूर्णता दृष्टिगोचर नहीं होती। जिस समय जैसा कार्य करना चाहिये, राम ने उस समय वैसा ही कार्य किया। राम रीति, नीति, प्रीति तथा भीति सभी जानते हैं। राम परिपूर्ण हैं, आदर्श है। राम ने नियम का, त्याग का एक आदर्श स्थापित किया। राम ने ईश्वर होकर मानवरूप रखकर मानवजाति को मानवता का पाठ पढ़ाया। मानवता का उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। मायातीत महेश होकर उन्होंने माया का आश्रय लेकर मानव लीलाएँ कीं। क्यों की ?

धर्मसंस्थापन के निमित्त । धर्म क्या ? जिसके अधीन होकर प्राणी अपने कर्तव्य को कुशलतापूर्वक, उत्तमतापूर्वक पालन कर सके, अपनी असीमित विषयवासनाओं को सीमित करके निर्विषय बन सके। धर्म साध्य नहीं है, साधन है। भगवान् का अवतार साधन सिखाने के निमित होता है, क्योंकि मनुष्य साधक है।

कर्ममात्र दोषमय, अपूर्ण और बन्धन के हेतु है। इसलिये नैष्कर्म्य-स्थिति को सर्वश्रेष्ठ कहा है। नैष्कर्म्य स्थिति कर्म करके ही प्राप्त की जा सकती है, अतः धर्मपूर्वक कर्म करना ही उत्तम साधन है। इन्द्रियों के अनुकूल विषयों के भोगने में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इन्द्रियाँ इतनी अतृप्त हैं, इतनी भूखी हैं कि विषयों को भोगते-भोगते ये तृप्त ही नहीं होतीं, उनको नियम में रखना यही धर्म का कार्य है। धर्म यही शिक्षा देता है। इसका उद्देश्य भोग में प्रवृत्त कराना नहीं है, परंतु प्रधान लक्ष्य है त्याग। एकमात्र त्याग से ही अमृतत्व की प्राप्ति हो सकती है। भगवती श्रुति कहती है- **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** भोग करो, त्याग-भावसे करो- **'मा गृधः कस्य स्विद् धनम्'**- किसी दूसरे के धन पर मन मत चलाओ। अधर्मपूर्वक जो दूसरे के उपभोग की वस्तु है, उसका उपभोग करने का विचार मत करो। त्याग ही प्रधान उद्देश्य है। त्याग द्वारा ही तुम परम-पद को प्राप्त कर सकोगे। अपने मुख्य उद्देश्य की पूर्ति कर सकोगे। राम ने अपने जीवन में एकमात्र त्याग को ही प्रधानता दी है, त्याग से ही उन्होंने सबके मन पर अपना अधिकार जमा लिया है। त्याग की मर्यादा स्थापित करके वे मर्यादापुरुषोत्तम के नाम से विख्यात हुए हैं। उनका जीवन सार्वजनिक होने से सबके उपयोगी है, क्योंकि उसमें नियम की दृढ़ता और त्यागकी प्रबलता है, कृष्णावतार में प्रेम की प्रबलता और त्याग की दृढ़ता है। यही दोनों अवतारों में अन्तर है। इसलिये कृष्णोपासना वैयक्तिक है और रामोपासना सार्वजनिक। राम का जीवन अनुकरणीय और शिक्षाप्रद है, आदर्श है, श्रीकृष्ण का चरित्र अनुकरणीय नहीं है, वह श्रवणीय है, पठनीय है, उससे अभिप्राय काला जाता है कि जगत् में प्रेम ही सार है प्रेम करो, प्रेम करो।

राम का जीवन नियम-प्रधान है, कृष्ण का जीवन प्रेम-प्रधान है। नियम और प्रेम-ये दोनों ही त्याग के बिना व्यर्थ है। अतः दोनों के जीवन में त्याग ओतप्रोत है। त्याग के बिना जीवन नहीं। वह तो बन्धन है, मोह है। कृष्ण की लीलाएँ प्रेम-प्रधान होने से वैयक्तिक है। राम की लीलाएँ, आदर्श, मर्यादापूर्ण होने से सार्वजनिक हैं। शिक्षाप्रद है। प्रेम के बिना तो वे हो ही नहीं सकतीं। किंतु उनमें संयत प्रेम है। नियमपूर्वक प्रेम है और श्रीकृष्ण तो **'इभराडिव भिन्नसेतुः'** है। जैसे गजराज नदी के तटों को छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण लीला में प्रेम के सम्मुख सबको तुच्छ माना है, इसलिये यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। पग-पग पर पतन की सम्भावना है। रामचरित्र राजपथ है, आँख मूँदकर चले जाओ। गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाओगे। राम ने मानवधर्म को प्रकाशित करके अवतार धारण किया। भक्तों को मर्यादा का पाठ पढ़ाने के लिये ही अपने चार चरित्रों का सुन्दर सेतु बना दिया, जिससे सुगमता- पूर्वक प्राणी भवसागर को पार कर सकें।

राम का जीवन त्यागमय जीवन है, राम सबका आदर करते हैं, इसीलिये वे बड़े है। जो संग्रही है, अपनी ही प्रतिष्ठा चाहता है, अपनी ही बात रखना चाहता है, वह कृपण है। राम जो करते हैं, दूसरों के लिये करते हैं, मेरे कारण किसी को क्लेश न हो इसका वे सदा ध्यान रखते हैं। रामके दो रूप है, परब्रह्म-रूप और पुरुषोत्तम- रूप। परब्रह्म-रूप तो

मन-वाणी से अगोचर है, उसके विषय में तो वेदोंने भी 'नेति-नेति' कहा है। उसका अनुभव तो योगिजन समाधि में करते हैं, वह विचार का विषय नहीं, उस विषय में तर्क- वितर्क से काम चलने का नहीं, वह तो अनुभवगम्य है।

विचारणीय विषय तो उनका पुरुषोत्तम-रूप है। नर-रूप धारण करके जो उन्होंने मानवीय लीलाएँ की हैं, उन्होंने जो एक मनुष्य-चरित्र का सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया है, उसके विषय में मानवता के नाते हम विचार कर सकते हैं। राम अपने सब भाइयों में बड़े थे, अतः छोटे के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसका आदर्श उन्होंने बाल्यकाल से ही उपस्थित किया। भरत जी जब खेल में हारने लगते, तब आप ढीले पड़ जाते, भरत को जिता देते और स्वयं प्रसन्न होते।

राजा ने राम को युवराज बनाना चाहा। गुरु ने आज्ञा दी। राम पिता तथा गुरु की आज्ञा का उल्लंघन कैसे करते ? वे राज्याभिषेक- के लिये प्रस्तुत हो गये। नगर सजाया गया। उन्हें दुःख था, उनके भाई भरत, शत्रुघ्न इस समय उपस्थित न थे, कारण जो भी रहा हो, लग्न उसी दिन को निकली थी। राज्याभिषेक होते-होते रुक गया। कुबरी की प्रेरणा से कैकेयी ने राजा को मोहकर राम का वनवास और भरत का राज्याभिषेक-ये दो वर माँग लिये। धर्मपाश में बंधे दुःखी राजा ने ये वर दे दिये। राम को सूचना हुई। राम उसी उत्साह से लक्ष्मण और सीता सहित वन चले गये। राजाने बहुत रोका, राम नहीं रुके, राजा सुरपुर पधार गये, भरत ने राज्य नहीं ग्रहण किया। राम को लौटाने चित्रकूट गये। राम लौटे नहीं भरत उनकी चरण- पादुका लेकर लौट आये। इस विषय में लोग ये तर्क करते हैं-

१- राम ने वन जाकर बुद्धिमानी का काम नहीं किया।

२- राजा स्त्री के वश में थे, ऐसे स्त्रैण पिता की अनुचित आज्ञा नहीं माननी चाहिये।

३- राम क्षत्रिय थे, उनका मुख्य धर्म प्रजापालन था, वन में बास करना मुनियों का धर्म था, राम को प्रजापालन-रूप स्वधर्म का पालन करना चाहिये था।

४- जब घर पर भरत-शत्रुघ्न नहीं थे, लक्ष्मण भी साथ जा रहे थे, बूढ़े पिता स्त्री के वशमें होकर रो रहे थे, मरणासन्न हो रहे थे, ऐसी दशा में राम को विलखती प्रजा को छोड़कर, बूढ़े पिता को तड़पते छोड़कर, रोती हुई दुखिया माता को छोड़कर वन नहीं जाना चाहिये था। भरत की प्रतीक्षा करते। भरत यदि राज्य स्वीकार करते तो राम बन जा सकते थे। जब सम्पूर्ण प्रजा नहीं चाहती, राजा नहीं चाहते, पुरोहित नहीं चाहते, भाई भरत नहीं चाहते ऐसी दशा में एक विकृत मस्तिष्क को स्त्री के कहने से वे वन को क्यों चले गये ?

५- और भरत की प्रतीक्षा न भी करते, तो कम-से-कम पिता के इस अनुरोध को तो वे स्वीकार कर ही लेते कि एक दिन उनके साथ रहकर साथ-साथ भोजन करके दूसरे दिन चले जाते।

६- सामने ऐसी निष्ठुरता दिखायी कि माता, पिता, पुरोहित, मन्त्री, प्रजा, वृद्ध, विप्रगण तथा किसी भी स्वजनके अनुरोध को उन्होंने स्वीकार न किया और निष्ठुरता के साथ वन चले गये। राजा मर गये, किंतु वे लौटे नहीं।

इस प्रकार की और भी अनेकों शंकाएँ की जाती हैं। इन सबका एक ही उत्तर है- विरोध विरोध से बढ़ता है। अधिकार के लिये लड़नेपर कलह होता है। एकमात्र त्याग से ही सबके मन को जीता जा सकता है। छोटे लोगों का काम है लालच करना। बड़े लोगों का काम है लालची की उपेक्षा करना। उनके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित करना, उनके लिये अपने अधिकार को त्याग देना। माता-पिता बच्चों को थाली में साथ बिठाकर खिलाते हैं। बच्चो का स्वभाव होता है, थाली में जो भी अच्छी वस्तु देखेंगे उसे शीघ्रता से पहले खा जायेंगे। माता-पिता उनकी इस चातुरी को देखकर हँस पड़ेगे। वे उनसे लड़ेंगे नहीं, अधिकार नहीं जतायेंगे कि मिठाई में आधा भाग हमारा भी है, तुम इन सबको क्यों खाये जा रहे हो ? इसी प्रकार छोटे यदि लालच भी करें तो बड़ों को त्याग-वृत्ति से ही उनपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। लड़कर उन्हें परास्त करके जो प्राप्त होता है वह उत्तम मार्ग नहीं है।

१- श्रीराम ने वन जाकर अत्यन्त बुद्धिमानी की। उनका चरित्र उसी कारण परम पावन और त्रिभुवनमें गान करने योग्य बन गया।

२- राजा स्त्री के वश में थे, इसे राम भी जानते थे, किंतु राजा विवश थे धर्म के कारण। कैकेयी ने उनसे शपथ करा ली थी। राजा को कैकेयी के प्रति तनिक भी ममत्व न था, वह मरे या जीवे। उन्हें चिन्ता थी अपने प्रण की। मेरे कुल में आजतक कोई ऐसा नहीं हुआ, जिसने प्रतिज्ञा करके उसे पूरा न किया हो। इसीलिये राम पिता के वचन को पूरा करने वन गये थे, न कि कैकेयी को प्रसन्त्र करने के निमित्त। वन जाने से कैकेयी की प्रसन्नता स्वाभाविक थी, यही उसको अभीष्ट था।

३- राम ने कोई गृहस्थ-धर्म का त्याग नहीं किया, विधिवत् वानप्रस्थ ग्रहण नहीं किया। वन में चौदह वर्ष मुनि-वेष बनाकर रहना ही था, इसलिये उनका वनवास नैमित्तिक था। वहाँ उनका जो स्वधर्म था, उनका उन्होंने पालन किया।

४- राम को विश्वास था, हमारी प्रजा हमसे संतुष्ट है। भय उस राजा को होता है, जिसकी प्रजा मन-ही-मन राजा से असंतुष्ट हो। राम जानते थे कोई भी न रहे, तो भी हमारी प्रजा हमारे विरुद्ध कोई भी षड्यन्त्र नहीं रच सकती। राज्यभार को तो हमारे पुरोहित ही सँभाल लेंगे। मैं लोभवश यहाँ रहता हूँ, तो मेरी कैकेयी माँ तो मर ही जायगी। मेरे पिता भी झूठे पड़ेंगे। प्रजा के मन में भी यह बात आयेगी। राजा शपथ करके वचन हारकर भी उसे पूरा न करा सके। सम्भव है हमारे साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेंगे।

५- पिता के एक दिन रहनेके आग्रह को राम स्वीकार करते तो उनकी उतनी प्रशंसा न होती जितनी अब हो रही है। वन तो उन्हें जाना ही था। एक दिन रह भी जाते, तो इससे राग-द्वेष और अधिक बढ़ जाता, दो पक्ष के होने पर उचित-अनुचित बातें होतीं। क्रुद्ध हुई कैकेयी न जाने क्या कर डालती ? उसने स्पष्ट कह दिया था, श्रीराम जब तक पुरसे बाहर न होंगे तब तक मैं जल भी न पीऊँगी। पिता तो मोहवश कह रहे थे। एक दिन रह भी जाते तो क्या हो जाता। वन तो जाना ही था, आज न गये कल गये। फिर कैकेयी के संदेह को बढ़ाने से क्या लाभ ? इसलिये तुरंत वन जाकर राम ने कलह को शान्त करने का एक सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया।

६- लक्ष्मण ने उन्हें अधिकार का स्मरण दिलाया, राजा को बंद कर देने की बात बतायी, अपनी सेवाएँ रामको अर्पण करने को कहा। रामसे राज्यसिंहासन पर बलपूर्वक बैठ जाने को कहा। दूसरा कोई होता तो इतनी सुविधा पाकर अपना अधिकार समझ कर धर्म के नाम पर विचलित हो जाता। किंतु राम तो राम ही ठहरे। लक्ष्मण को इस प्रकार समझाया कि आगे उनका कुछ कहने का साहस ही न पड़ा। राम राज्य के भूखे नहीं थे, राम कलह नहीं चाहते थे, उन्हें तो प्रेमपूर्वक आत्मीयों के ऊपर विजय पानी थी, त्याग और तपस्या द्वारा कुल के गौरव की रक्षा करनी थी। यदि राम राज्य के अधिकार में फँस जाते तो उनका चरित्र कैसे बढ़ता, कैसे लोग उस पावन चरित्रों को पढ़-पढ़कर पार होते।

रामचरित में जो मुख्य प्रसंग है वह राज्य को त्यागकर वन जाने का ही है। अर्थात् त्याग ही आदर्श है। पंद्रह वर्ष तक विवाह-चरित्र है, १४ वर्ष तक वनका चरित्र है, २९ वर्षों का ही वर्णन है। इसके पश्चात् उन्होंने ग्यारह सहस्त्र वर्ष राज्य किया, उसका कुछ वर्णन नहीं। इसमें वर्णन वाली कोई बात नहीं। राम राजा थे, राजा के कर्तव्य का उन्होंने उत्तमता से पालन किया। संध्या करना द्विजमात्र का धर्म है, कर्तव्य है, इसके करने से कोई विशेष पुण्य नहीं। हाँ, न करने से पाप अवश्य लगता है। संध्या-वन्दन के अतिरिक्त जो विशेष दान, धर्म, तप आदि किये जाते हैं उनसे यश होता है, प्रशंसा होती है। रामने राजकुमार होकर राज्य का अधिकार मिलते-मिलते प्रसत्रता पूर्वक उसे त्याग दिया और सर्वस्व त्यागकर क्षणभर में वनवासी वन गये। यही उनका महान् आदर्श था। त्यागी-वैरागी राम के उसी रूप के उपासक है। वे जटा बढ़ाकर भस्म रमाकर राम के उसी रूप को बनाते हैं और वनवासी राम का ध्यान करते हैं। वनवास का भी रामने कितना उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया।

तेरह वर्षों तक वे वनों में विचरते रहे। कहीं कुटी और मठ बनाकर नहीं रहे। त्यागी जहाँ कुटी-मठ बनाकर रहने लगता है वहाँ राग द्वेष हो ही जाता है, फिर उसके जीवन में स्फूर्ति नहीं रहती। नियमितता आ जाती है, सहयोगियों के गुण-दोष दिखने लगते हैं। इसीलिये कहावत है- **'पानी बहता भला, साधू रमता भला।'** अन्तिम चौदहवें वर्ष मे पञ्चवटीमें कुटी बनाकर आश्रम निर्माण करके रहने लगे, वहीं उपद्रव खड़ा हो गया। भाग्य की मारी शूर्पणखा आयी।

वह आते ही राम के रूप पर मोहित हो गयी। दोष तो इसमें रामका ही था, यदि वें इतने सुन्दर न होते, तो नरमांस- भक्षिणी राक्षसी विमोहित क्यों हो जाती। किंतु राम करे क्या ? वे माया तो कर नहीं सकते, कि भीतर कुछ और बाहर कुछ और, वे जैसे थे वैसे बने रहे। राक्षसी ने माया की। वह भीतर से कुरूपा थी, ऊपर से सुरूपा बन गयी। किंतु राम ठहरे अत्यन्त भोले-भाले। राम में बनावट नहीं, दुराव नहीं, छिपाव नहीं। **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** राम बात को पलटना नहीं चाहते। इसीलिये वे जैसे-के-तैसे बने रहे। फिर सीधे-साधे राम ने राक्षसी से हँसी क्यों की ? उसके नाक-कान फाटकर उसे कुरूपा क्यों बनाया? क्या राम ने यह अन्याय नहीं किया

देखिये ऊपर से देखने में यह अन्याय-सा भले ही दीखे, पर राम ने कोई अन्याय नहीं किया। शूर्पणखा को दण्ड देकर एक सर्वोत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। राम नहीं चाहते थे कि उसे दण्ड दिया जाय, किंतु वे विवश थे, अन्य कोई उपाय न देखकर उन्होंने ऐसा किया। साम, दाम और भेद से काम न चले तो विवश होकर दण्ड का आश्रय लेना ही पड़ता है। जिनके मन में कामवासना ने घर कर लिया है, वहाँ राम अपने रामरूप से रह नहीं सकते। **'जहाँ काम तहँ राम नहिं।'**

राक्षसी राम के त्रिभुवन-विमोहित अनूप-रूप को देखकर आसक्त हो गयी और राम से उसने कहा- 'मेरे साथ तुम विवाह कर लो।

राम ने शान्ति से कहा - 'देवीजी ! मेरे पास तो बहू है। मैं दो विवाह नहीं करता।'

वह बोली- 'इसे मैं खाये जाती हूँ।'

राम ने साम से काम न होते देखकर दाम का आश्रय लिया। कह दिया- 'अच्छा मैं अपने भाई को कह देता हूँ, उसे दुलहा बना लो।' लक्ष्मण ने उसे नहीं स्वीकारा। सेवा-धर्म के विरुद्ध था। सेवा-धर्म में शारीरिक सुख को कोई स्थान नहीं। दाम से भी काम न चला तो राम ने भेद डाला। कह दिया- 'लक्ष्मण ऊपर से ही कहता है, तुम उसकी अनुनय-विनय करो।' राक्षसी फिर लक्ष्मण के समीप गयी। यथार्थ बात यह थी कि राम समय को टाल रहे थे, काम का वेग, ज्वर का वेग तथा वैराग्य का वेग सदा एक-सा नहीं रहता। राम समय टाल रहे थे, राक्षसी का रंग गाढ़ा होता जाता था। **'कामात्क्रोधोऽभिजायते।'** कामवासना की इच्छानुसार पूर्ति नहीं होती, तो क्रोध आ ही जाता है। राक्षसी ने देखा राम काम के वशीभूत नहीं होते। ये निर्विकार बने हुए हैं। तब उसे क्रोध आ गया। जब दोनों ही ओर से विकार हो तभी सम्बन्ध होता है। राम निर्विकार, राक्षसी काम के अधीन, सम्बन्ध न हो सका। वह सीताजी को खाने दौड़ी। अब हम पूछते हैं नाक, कान काटने के अतिरिक्त दूसरा कौन-सा साधन था। अब तो वह आततायिनी बन गयी थी। आग लगाने

वाला, विष देने वाला, अन्यायपूर्वक हाथ मे अस्त्र लेकर मारने वाला, धनहारी, क्षेत्रहारी तथा पल्लोहारी - इन छः को आततायी बताया है। इनके वध मे कोई दोष नहीं है। औरो को तो क्षमा भी किया जा सकता है, किंतु जो हत्या करने को सिर पर चढ़ा है, अन्याय कर रहा है, उसे दण्ड देने के अतिरिक्त और क्या उपाय है। वह सीताजी पर झपट रही थी, सीताजी डर रही थी। वह प्रहारकारिणी भी थी और पत्नीहारिणी भी थी, कामिनी और धर्महारिणी भी थी। ऐसी स्त्री को मार डालने में भी कोई दोष नहीं, किंतु राम ने उसे मारा नहीं, विरूप करके विदा किया। राम के इस व्यवहार में सर्वोत्कृष्ट सदाचार, पतिकर्तव्य, जितेन्द्रियता, निर्भयता तथा पूर्ण पवित्रता का समावेश है।

अब प्रश्न यह उठता है, राम ने उस स्त्री से हँसी की ही क्यों ? इसका उत्तर तो हम पहले ही दे चुके हैं। राम उसे इधर-उधर करके समय टाल रहे थे। थोड़ी देर को मान लो कुछ शिष्ट विनोद कर भी दिया, तो राम में कुछ तो मानव-स्वभाव की झलक रहने ही दो। सहसा कोई स्त्री आकर ऐसा सरस प्रस्ताव करती है, तो उससे रूखापन किया भी नहीं जाता। देखते ही उसे डाँट दे, लाठी मार दे, यह मानवता नहीं, सदाचार नहीं। मनुष्य नीरस प्राणी नहीं, सरस है। उस सरसता को स्त्री बढ़ाती है। किंतु सरसता धर्मविरुद्ध न हो।

इस प्रकार राम के चरित्र में हम पग-पगपर मर्यादा देखते हैं। राम मानवधर्मक प्रतीक है, राम त्यागकी मूर्ति हैं, राम प्रेम की सजीव प्रतिमा हैं। राम लोकव्यवहार के उपदेष्टा हैं, राम मर्यादा के रक्षक हैं, राम सदाचार के शिक्षक है, राम का चरित्र इतना विशुद्ध है कि उनमें त्रुटि शंका की सम्भावना ही नहीं। अन्त में पाठकों से यही प्रार्थना है कि वे राम के सरल नाम का जप करें, राम के सुमधुर नामों का कीर्तन करें, राम के अनुपम रूप का ध्यान करें, राम को सुन्दर शिक्षाओं को धारण करें, राम की सुमधुर कथा का नियमपूर्वक श्रवण करें। राम के अनुपम आदर्श को आगे रखकर व्यवहार करें और राम की भक्ति में अपने को निमग्न कर दें। राम के सच्चे भक्तो का आश्रय ले। उपासना के लिये राम-सा सरल-सीधा, स्वामी कहाँ मिलेगा ?

राम ! हृदय मह बसो काम कूँ तुरत भगाओ।
राम। मलिन मारीच बन्यो मन मारि गिराओ।
राम ! सिन्धु भव बहत सेतु करि पार लगाओ।
राम ! निहारे राह आइ तन तपन बुझाओ।।
राम ! न साधन भजन मन, बने परे पाषान हम।
राम ! छुआओ चरन निज, हो जड़ चेतन करन तुम।।